प्रणयधर्म का गायनः परंपरा से उत्तर आधुनिकता तक

अवनीश सिंह चौहान

लगा खिड़की से सटी
चुपचाप/गीतांजलि खड़ी है
और चारों ओर बिखरी हैं हजारों पुस्तकें!

–शलभ श्रीराम सिंह

पारंपरिक प्रणयधर्मी गीतों पर हजारों पुस्तकें लिखी गयी हैं और उन पर शलभ श्रीराम सिंह जी की उपर्युक्त टिप्पणी काफी सटीक बैठती है। किंतु दिनेश सिंह के गीत–संग्रह 'टेढ़े–मेढ़े ढाई आखर' को पढ़ने पर लगता है कि गीतांजलि स्वयं इस पुस्तक को उठाकर इसमें अपना चेहरा देखने का प्रयास कर रही है। ऐसी स्थिति में निश्चय ही दिनेश सिंह का यह गीत संग्रह उन हजारों पुस्तकों में अनूठा है। दिनेश सिंह भावाकुल मन की बात, प्रेम के पवित्र प्रवाह तथा उसके आधुनिक चलन को कहने के बहुत से तरीके जानते हैं, उनको इन रागबंधों से जुड़े जीवन और परिवेश की गहरी समझ है और इस विषयवस्तु को मूर्त रूप देने के लिए जिस माध्यम का वह प्रयोग करते हैं उससे लगता है कि वह प्रेमगीत परंपरा को भी भली–भाँति जानते रहे हैं। इसीलिए प्रेमभाव की चरम तन्मयता में उन्होंने अपनी अनुभूतियों को इस काव्यकृति में बखूबी गाया है और अपनी प्रेम–लड़ियों को सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकारों से जोड़कर तथा आम भाषा एवं सहज संगीत में पिरोकर प्रणयधर्मी गीत साहित्य को और अधिक विस्तृत फलक प्रदान किया हे।

इस संग्रह में कविवर दिनेश सिंह प्रेम की उदाद्ता को जिस प्रकार से गीतायित करते हैं उससे प्रेम की गहराई, पवित्रता एवं गरिमा का तो पता चलता ही है, वर्तमान में पाश्चात्य जगत् से प्रभावित प्रेम की प्रचलित प्रणालियों से प्रेम मूल्यों में जो गिरावट आयी है उससे प्रणयधर्म का बेड़ा गर्क हो रहा है यह बात भी सामने आती है। इससे यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि वे प्रणय प्रणाली के धुर विरोधी हैं बल्कि वह तो प्रेम की मूलभूत संवेदना एवं संस्कार को सँजोये–सँवारे रखकर प्रीति की साफ–सुथरी धारा को सतत प्रवाहित रखना चाहते हैं जिससे इस स्वस्थ एवं सुंदर कला के माध्यम से जीवन को सार्थक बनाया जा सके। वह नहीं चाहते कि आज बाजारवाद एवं विज्ञापनवाद की लहर में प्रेम भी व्यापारिक अनुबंधों की भेंट चढ़ जाए और विलासिता और ऐश–ओ–आराम के लिए दैहिक आग को शांत करने में अपने आपको होम कर दे। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

1) नेह के नाते बचे/जो देह में खोते गये/
हलक तक प्यासे/कि पोखर–कूप के होते गये।

2) नुमाइश में क्या करोगे/दिखोगे कीमत धरोगे/
दूसरों की निगाहों के/स्वाद का ही दम भरोगे।

3) फूलों में मन था, थी सुगंध में साँसे/
चाँदनी रात अनबुझी ओस की प्यासें/
पुरवा भीतर की कसक मसक न पाई/
पछुवा मौसम की भरने लगी उसाँसे।

इस उल्टे परिदृष्य के बावजूद भी आज समाज में प्रेम की पहले से अधिक गहरी पैठ (सामाजिक स्वीकारोक्ति एवं संस्तुति के संदर्भ में) बनी है लेकिन इसमें भी आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्तर को ध्यान में रखा जाता है। ऐसे में सच्ची एवं पारदर्शी संवदेनाओं के साथ प्रणयी मुश्किल से ही दिखाई पड़ेंगे और यदि मिल भी गये तो 'गजब मन का चलन पाये' हुए प्रेमियों के बीच उनके लिए 'यह इश्क नहीं आसाँ होगा'। यदि आसान हो भी गया तो उनके लिए जीवन व्यवहार में 'पंडित' हो पाना बहुत कठिन होगा। हाँ, यह बात तो ध्यान देने योग्य है कि कवि दिनेश सिंह ने प्रणयी के जिस पारंपरिक रूप को उकेरा है उससे ऐसाा विश्वास बनता है कि यह प्रेमी उपरोक्त दोंनों ही कसौटियों पर खरा उतरेगा बशर्ते उसकी प्रिया उसका साथ पूरी ईमानदारी से निभाये।

इस गीत कलश पर नायिका भेद तथा नख शिख वर्णन कर किसी प्रेयसी की भाव–भंगिमाओं को नहीं उकेरा गया है वरन् लीक से हटकर प्रेमी की मनोदशा एवं प्रेम के प्रति उसका अनुभवजन्य दृष्टिकोण का यथार्थपरक एवं सटीक चित्रण किया गया है। ऐसा चित्रण अंग्रेजी साहित्य में रॉबर्ट ब्राउनिंग के 'ड्रामेटिक मोनोलॉग्स' में देखने को मिलता है जिसमें प्रेम के सारे कार्य व्यापार नायक के मानस पटल पर ही होते हैं और उसके इन मनोभावों से पाठक का सीधा परिचय बनता है। दिनेश सिंह द्वारा अपनी इस कृति में प्रेमी के मानसिक स्तर पर उतरकर प्रेम के विविध रंगों को इतनी बेबाकी से प्रस्तुत करना बड़ा ही रोचक एवं विलक्षण है। इनमें कभी तो प्रणयी दिल की व्याकुलता को प्रकट करता है, तो कभी प्रकृति से प्रेरित उसके मन की उत्कण्ठा एवं उल्लास को व्यक्त करता है। कभी वह प्रेमी प्रेम की भट्टी में तपने लगता है, तो कभी किसी अनजान प्रिया द्वारा स्पर्श कर लिये जाने की

लालसा करने लगता है–'एक राग/एक आग/सुलगाई है भीतर/रातों भर जाग–जाग/...कोई तो छूले/फिर कदंब फूले'। उसकी यह मनोकामना किसी क्षणिक आवेग से प्रेरित नहीं है बल्कि इसके पीछे भी एक आधारभूत कारण है–'पिया कहाँ?/हिया कहाँ/पूछे तुलसी चौरा/बाती बिन दिया कहाँ' बाती का दिया से जो अटूट रिश्ता है उसी को प्रेमी युगल के मध्य प्रकट कर कवि प्रेम के मर्यादित स्वरूप की पुष्टि करता है।

प्रेम की आग एक बार जल गयी तो वह लंबे समय तक धधकती रहती है। इस स्थिति में दिन या रात का कोई मतलब नहीं रह जाता, आँखें खुली हैं तो दिन, झपकी आ जाए तो रात। प्रेमी का एक ही काम–प्यार के सपने बुनना और इस नित्यकर्म में उसका मन कभी तो हर्ष की लहरों में हिलोरें लेने लगता है तो कभी उदासी के बादल उसे घेर लेते हैं। तभी तो प्रेमरोग की इस अवस्था में वह अपने मन से पूछ बैठता है–'तेरे वे सब हँसी–ठहाके/कौन ले गया, कहाँ चुरा के/एक उदासी की चादर में/क्यों अपने को रखे छुपा के/तू ही क्यों/जागा करता है/जब सारी दुनियाँ सोती है'। अपनी प्रिया की यादों में खोकर ही उसकी यह दशा हुई है। इसका उसे कोई मलाल नहीं है बल्कि इससे जीवन को जिंदादिली से जीने की उसकी चाह और भी प्रबल हुई है। हाँ, यह सच है कि विरह की वेदना उसे उदास तो करती है पर इस समय उसका प्रेम–पंछी उसे चहकता ही नजर आ रहा है क्योंकि उसने अपनी प्रेमिका की यादों में ही अपनी खुशियाँ खोज निकाली हैं। यथा–

वह गुलाब का फूल/तुम्हारी फुलवारी का/
अब भी सपनों की दुनियाँ में महक रहा है/
यादों की खुशबू में/बौराया फिरता मन/
डाल–डाल पर पंछी बनकर चहक रहा।

मन में प्रेम–पंछी का चहकना कोई साधारण स्थिति नहीं है प्रेमी की। धीरे–धीरे उसकी यह दशा उसके दीवानेपन की हदों को भी पार करने लगती है। उसका मन उसी से सवाल करने लगता है–'ओ रे मेरे मन/पागलपन की भी कोई हद होती है'। वह अपनी सुध–बुध खो बैठता है। उसे हर रस फीका लगने लगता है। उसे अपनी प्रिया की कमी इतनी खलने लगती है कि वह कराह उठता है–'बुझ बुझ जाये/लाख जलाऊँ/मन का दिया तुम्हारे बिन' क्योंकि अब 'उजले दिन की याद दिलाता एक अँधेरा भीतर से'। वह बेवस है, मजबूर है और वह अपना क्या कुछ गँवा चुका है इसका अंदाजा लगा पाना हर किसी के वश की बात नहीं। यथा–'क्या जानो/मजबूरी ने/क्या–क्या ले लिया तुम्हारे बिन'। प्रिया की अनुपस्थिति उसे उदास तो करती है किंतु वह यह भी जानता है कि मिलन होने पर यह उदासी छूमंतर हो जाएगी। प्रेम में संयोग एवं वियोग के पल उसे जीवन जीने की कला सिखाते हैं। और वह पाता है कि जब–जब उसका उससे मिलन होता था वह एक अतिरिक्त ताजगी, खुशी से सरोवर हो जाता था और उसे लगता था कि 'रोज मिलने के लिए/तुम रोज होते थे नये'। इस नयेपन के लिए ही तो उसका हृदय इतना धड़कता है। उसकी धड़कनें ज्यों–ज्यों बढ़ती है उसका मन उसे सदा–सदा के लिए पाने की इच्छा करने लगता है। उसकी यह आकांक्षा बड़ी ही सात्विक है क्यांकि यही वह तरीका है जिसको अपनाकर वह एक हँसते–किलकारते सुखद परिवार का सपना पूरा कर सकता हे। उसे यह भी लगता है कि ऐसा होने से उसका जीवन भी सार्थक हो जाएगा जोकि उसका परम ध्येय है–

कोई बिछुआ रुनझुन–रुनझुन बोले/
घूँघट पट कोई विव्हल मन खोले/
आवेग जगाए छंद–सृजन की लय/
घर भर में शिशु की किलकारी डोले/
करने को इतना भर होता/
जीने का अर्थ मुखर होता।

चूँकि प्रेमी ने जीवन को सार्थक एवं सफल बनाने के लिए प्रेम का रास्ता चुना है, ऐसे में जब विषम परिस्थितियाँ उसके जीवन में खलल डाल देती हैं तब भी वह अपनी प्रेयसी के सुखद एवं मंगलमय जीवन की कामना करता है–'तुम घर रहो/बाहर रहो/ऋतुराज के सिर पर रहो/बौरी रहें अमराइयाँ/पिक का पिहिकता स्वर रहो'। वह अपने जीवन में भले ही कितना हार–थक क्यों न गया हो, उसका रोम–रोम आह–कराह से व्यथित क्यों न हो, उसकी स्वार्थरहित निर्मल भावनाएँ उसकी महानता की गौरव गाथा लगती हैं। ऐसे प्रेम में बड़ी लोच रहती है तभी तो ऐसी भावना, ऐसा समर्पण, ऐसा त्याग देखने को मिलता है। अपनी प्रेयसी की खुशियों की खातिर विषम समय में भी वह अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर है। और वह इतने से ही संतोष कर लेता है कि उसका उसकी प्रेमिका से मिलन हो न हो, उसका साथ मिले न मिले कोई बात नहीं, उसकी यादों के सहारे उससे भावनात्मक रिश्ता बना हुआ है–

1) प्यार का आशीष/तुझ पर रहेगा मेरे बिना/
मन नहीं है मानता तेरे बिना/
देखता हूँ ताल में हैं फूल/औरों के लिए/
फूल भी है कमल का/अनुरक्त भँवरों के लिए/
गंध मुझको मिल रही है/ताल को घेरे बिना।

2) खुशबू बनकर रहो साथ में/चाहे कहीं फलो–फूलो।

3) सौंप रहा हूँ तुम्हें रोशनी जीवन की/
बुझता चिराग मेरी आँखों में लहक रहा है।

वह अपनी प्रेयसी की खुशी में खुद को कड़ुवा घूँट पीने के लिए विवश पाता है। उसका हृदय बैठा जा रहा है। उसे लग रहा है कि वह जिस भावनात्मक रिश्ते से संतोष कर रहा है, समय के साथ वह भी समाप्त हो जाएगा। और तब उसके पथराये मन के लिए तो दिन भी स्याह रातों की भाँति नीरस हो जाएँगे–'तुम धीरे–धीरे खो जाओगे अपने में/मन मेरा पत्थर हो जाएगा धरे–धरे'। इस तिक्त घड़ी में उसके मन में यह बात भी आती है कि वह तो दूसरे की खुशियों की खातिर अपना सब कुछ बलिदान कर देता है पर उसको इस भँवर से निकालकर मंजिल तक पहुँचाने वाला कोई भी सामने नहीं आता–'पार उतारूँ/मैं सबको/मुझको ना कोई पार उतारे'।

प्रेमी रसिक ने तो अथक परिश्रम किया अपनी प्रियतम को प्राप्त करने के लिए किंतु उसका प्यार परवान नहीं चढ़ सका। उसने उसे पाने के लिए जाने कितने सितम सहे तथापि उसकी प्रियतमा प्रेम का दीपक जला लेने के बावजूद भी उस दीपक से राह का अँधेरा दूर कर पाने में उसका साथ नहीं दे पाती। उसके पास अवसर था पर वह हिम्मत नहीं जुटा पायी और अवसर हाथ से जाता रहा। इसे लापरवाही कहा जाए या उसकी बुजदिली या समय का प्रहार, यह बात स्वतः ही संकेतित हो जाती है–'प्यार के थे तीर दिल में/...तुम चला भी ना सके/वे तरकशों से छिन गये'। जमाने की टेढ़ी चाल ने उन दोनों के जीवन को विपरीत ध्रुवों की ओर मोड़ दिया। वह किसी और की हो गयी जबकि प्रेमी कहीं का न रहा–'मै तपी भट्टी सरीखा/जुदाई की आग में/तुम चले आये नहाये से/सदर्प सुहाग में' तथा 'हम कहीं के ना रहें/ना घाट ना घर के'। प्रेमी मजबूरन इस सच्चाई को अब धारण कर ही लेता है कि 'मैं नहीं हूँ अब/तुम्हारी आँख का सावन'। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को वह नियति का खेल मान लेता है–'सब नियति का खेल मानो'। वह यह भी समझ रहा है कि अब मूल्यों की बात बेमानी हो गयी है, नीति की बातें अब नहीं होती। अब तो किसी को हासिल करने के लिए सत्य और न्याय का भी रास्ता छोड़ना पड़े तो छोड़ देते हैं लोग, क्योंकि उनका उद्देश्य किसी न किसी तरह से जीत हासिल करना है। यथा–'अब महासंग्राम है जीवन/तरीके कुछहीं/जिस तरह बन पड़े/बढ़कर जीत लो पूरी मही'। लेकिन यह गाँव का निश्छल प्रणयी इस चलन को नहीं अपनाता। वह अपने जीवन में आये इस दुःखद समय को विधि का विधान मान कर बैठ जाता है। उसका प्रेम असफल हुआ तो हुआ है वह छल–बल का प्रयोग करने का इच्छुक कतई नहीं है। यद्यपि वह जिन ख्वाबों को देखता आया है, जिन यादों को बुनता आया है, वे सब पूरी तरह से चूर हो गये हैं–खून पानी संग तिरतीं/पुतलियाँ पथरा गयीं/मधुर यादों का दमकता/एक शीशा चूर है'। अब बड़ी दयनीय स्थिति है इस प्रेमी की । उसका जीवन ही पूरी तरह से दुःख में डूब गया है। यथा–'पहले मैं गाया करता था गीत तुम्हारे/अब वे यादें अपना दुखड़ा गाती हैं'। दुःख एवं अवसाद की ऐसी घड़ी में उसका जीना मुहाल है, वह तिल–तिल मरता जा रहा है–'एक काया हो रही माटी/तुम्हारे गाँव में/बाँधकर पत्थर पड़ी है/बाबरी जो पाँव में'। यह प्यार के पागलपन का चरमोत्कर्ष ही कहलायेगा जिसमें जीवन तो है पर उसका रंग उड़ गया है और वह चलती फिरती रूह बन गया है–'चलती–फिरती रूह बन गया है यह जीवन/राहें उल्टे पावों को भरमातीं हैं'।

दिनेश सिंह के इस प्रणयी ने अपनी माटी से जुड़कर जीवन जीने के लिए सच्चे एवं पवित्र प्रेम को आधार बनाया और ताउम्र उसी प्रेम में घुटता रहा, मिटता रहा। और अब तो वह 'केवल जिंदा है इस घर में मर जाने को'। लेकिन इस अवस्था में भी वह प्रेम की आग को अपने अंदर बुझने नहीं देता, इसे उसकी दीवानगी कह लो या फिर प्रेम के प्रति पूरी निष्ठा। और कहीं न कहीं अपने इन्हीं मानकों पर चलकर ही वह इस आधुनिक प्रणय परिवेश में सफल नहीं हो सका। उसकी असफलता में प्रेम की वर्तमान रीति भी बहुत हद तक जिम्मेदार है। आज भावनात्मक आयाम बदल चुके हैं, मानवीय मूल्यों में आयी गिरावट से प्रणय मूल्य भी प्रभावित हुए हैं। अब प्रेम किसी राग और आग के वशीभूत होकर नहीं किया जाता है। प्रेम शब्द तो ओट लेने के लिए है जिसके पीछे मुख्य मकसद तुफरी करना हो गया है और धन–वैभव को सर्वोपरि मानकर तथा इसी माध्यम का प्रयोग कर प्रेमी प्रेम की पींगे भर रहे हैं–'जीवन तफरीहों का अवसर मानें/वैभव को अपना असली घर मानें'। और ये लोग इन्हीं खोटे विचारों से अपनी जीवन–यात्रा में आनंदित हो रहे हैं क्योंकि ऐसे लोग जानते हैं कि पैसे से सब कुछ पाया जा सकता है चाहे वह प्रेम या कोख ही क्यों न हो–'कीमतों के बोल उठकर गिर रहे/बिक रही है कोख बाधिन की'। यही कारण है कि आज के बहुत से प्रेमियों, जोकि उपरोक्त प्रणाली में विश्वास रखते हैं, के स्वभाव एवं कर्म में वैसा जोश, वैसी गरिमा नजर नहीं आती। वे अति चंचल एवं निर्लज्ज हो गये हैं। ऐसा नहीं है कि यह स्थिति सिर्फ प्रेमियों की ही हो, प्रेमिकाएँ तो उनसे भी चार हाथ आगे हैं और प्रेम की बाजीगारी में उनको महारथ हासिल है। इसे समय का फेर नहीं कहा जाएगा तो और क्या कहा जा सकता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

1) एक से दो हो गये/दो से हुए जो चार हैं/
वे सभी हैं मीत मन के/मंडली के यार हैं/
एक का सपना सजाकर/शेष को अपना कहें/
ये सियासत के चलन ही/रस्म हैं, व्यवहार हैं।

2) कंचन काया की नादानी/और बिपाशा भीतर की/
कई निगाहों में बस जाने की/प्रत्याशा भीतर की/
जीने की लय बनकर आयी/स्वयं समय की चालों में।

3) मन से ज्यादा सेच रहे हैं तन की/
उम्र कहीं हो बात करें यौवन की/

चटक रंग चूनर के चाँद–सितारे/
रास–रंग में लीलाएँ मधुवन की।

4) छुप–छुपकर मिलती रहती है/अपने दूजे खसम–यार से/
बचे समय में मुझसे मिलती/गलबाहें दे बड़े प्यार से/
उससे लेती छाँह देह की/मुझसे लेती/ढाई आखर।

उत्तर आधुनिक प्रेमियों के ऐसे चारित्रिक एवं नैतिक पतन से प्रेम की गरिमा धूल–धूसरित हुई है। इसके पीछे आज की अतिभौतिक मानसिकता ही है जिसमें चमड़ी और दमड़ी का व्यापार बड़ा चोखा माना जाता है। चूँकि ये लोग बिकने/बिकाने, खरीदने–बेचनें में ही विश्वास रखते हैं और मुनाफा कमाने की तरकीबें भिड़ाते हैं–'यों कि बिकने और लुटने के लिए/खाली कसम' और 'उस तरह सीखा/सनम से प्यार करना/जिस तरह सीखा/खुला व्यापार करना'। ऐसे में उनके लिए सच्चे प्यार के माने कुछ नहीं। चूँकि व्यापार में झूठ और अवसरवादिता का बड़ा महत्व है–'अवसरों में ही सभी जीते यहाँ', एक सच्चा प्रणयी दिल इस व्यापार के मेले में टिक नहीं सकता–'मेरे पास झूठ की पूँजी तनिक नहीं/कैसे टिक पाऊँगा मैं व्यापार में'। उत्तर आधुनिक प्रेम में छल और धोखे का प्रयोग हो रहा है और खोखले मीठे बोल भी–'सही बोल दिल के दिल में रहे/ओंठों पर चासनी चढ़ा लिया' और 'गढ़ रही सच्चाइयाँ धोखा/और धोखे से मिले दो दिल/....बन गये हैं प्यार के काबिल'। अब ऐसे प्रेमी यह भी मानते हैं कि अब समय नहीं 'उस प्यार का/जो कि दीवाना बना दे', बल्कि अब 'जमाना है पास आते आदमी को/तूल देकर तूलने की'। इसी को प्रेम करने एवं प्यार पाने का सफल तरीका माना जाने लगा है। अब यह बात बहुत मायने नहीं रखती है कि इस दिखावे में कितनी हकीकत है–'यहाँ दिखावे की हद तक सब आते हैं/पर्दे के पीछे असलियत छिपाये हैं/भीतर–बाहर से गँधाते तन–मन को/खुशबू के हम्मामों में नहलायें हैं'। इस बनावटी खुशबू में ये सब मधहोश हो गये हैं और जो लोग ऐसा नहीं हो पाते 'वे बदनाम हैं'। और असफल भी। यह नयी सोच की, नये ढंग की, नये प्यार की, नयी उड़ान किसको कितना आतंकित करती है और किसको कितना राहत देती है यह उसके व्यक्तिगत स्वभाव एवं संवेदना पर निर्भर करता है। निष्कर्षतया यह संग्रह जरूरी रूप से पठनीय एवं संग्रहणीय है।

अवनीश सिंह चौहान
चन्दपुरा (निहाल सिंह)
जनपद–इटावा
(उ.प्र.)–206127

(समीक्षित कृति–'टेढ़े मेढ़े ढाई आखर', रचयिता–दिनेश सिंह, प्रकाशक–सुलभ प्रकाशन, 17 अशोक मार्ग, लखनऊ, उ.प्र.–226001, प्रथम संस्करण–2002 ई0, मूल्य–रू. 100/–, पृष्ठ–104, कवि का संपर्क पता–ग्राम–गौरा रूपई, पो–लालूमऊ, जनपद–रायबरेली, उ.प्र.)